Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 SHISRRJ | Volume 4 | Issue 2 | ISSN : 2581- 6306

'आधुनिक परिप्रेक्ष्य में वैदिक युगीन प्राकृतिक चिकित्सा की उपादेयता'

डॉ० उमाकान्त यादव
प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत।

Article Info
Volume 4, Issue 2
Page Number : 103-108

Publication Issue :
March-April-2021

Article History
Accepted : 10 March 2021
Published : 15 March 2021

सारांश: वैदिक वाङ्मय में प्राकृतिक चिकित्सा रोग निवारणार्थ एक उत्तम पद्धति है जिसका सूत्रपात वैदिक ऋषियों ने किया है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसकी उपादेयता और बढ़ गयी है। सम्पूर्ण विश्व में प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति आकर्षण उत्पन्न हो रहा है क्योंकि यह पद्धति पूर्णतः दोषमुक्त है। इसे अंगीकार कर सम्पूर्ण मानव पूर्ण एवं स्थायी स्वस्थता का प्राप्त कर सकता है।

मुख्य शब्द – वैदिक, आधुनिक, प्राकृतिक, चिकित्सा, भैषज्य–विज्ञान, संस्कृति, अथर्ववेद।

वैदिक युगीन भैषज्य–विज्ञान भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है। चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से भी वैदिक वाङ्मय का विशेष महत्त्व है। अथर्ववेद के अनुसार तत्कालीन समाज में वैद्यों की बहुलता थी तथा सहस्र प्रकार की औषधियाँ प्रयुक्त होती थी।[1] इसी कारण अथर्ववेद को 'भेषजवेद' के रूप में भी व्यवहृत किया जाता है।[2] सुश्रुत संहिता तो आयुर्वेद को अथर्ववेद का अंग मानती है[3] तथा कश्यपसंहिता आयुर्वेद की उत्पत्ति अथर्ववेद से ही स्वीकार करती है।[4] चरक ने चिकित्सकों को अथर्ववेद के अध्ययन की आवश्यकता पर बल दिया है क्योंकि यह ग्रन्थ हवन, नियम, प्रायश्चित, उपवास, मन्त्र आदि द्वारा चिकित्सा का विधान करता है।[5]

मानव जीवन का मुख्य केन्द्र बिन्दु प्रकृति है। सभी प्राकृतिक तत्त्व यथा– पृथ्वी, जल, अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्र आदि किसी न किसी रूप में प्राणी–जीवन के लिये परमोपयोगी हैं। वैदिक ऋषि रोगों का उपचार मन्त्र– विद्या, मन्त्रसिद्धमणियों, वानस्पतिक औषधियों के साथ ही प्राकृतिक तत्त्वों यथा– सूर्य, जल, अग्नि आदि से करते थे। वैदिक वाङ्मय में उपलब्ध साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि वैदिक ऋषि प्राकृतिक चिकित्सा को विशेष महत्त्व देते थे। वैदिक काल में मानस–चिकित्सा तथा हस्तस्पर्श–चिकित्सा का भी प्रचलन था।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह चिकित्सा पद्धति पूर्णतः प्रासंगिक है और वर्तमान महामारी कोरोना के काल में यह अतीव उपादेय है।

वैदिक काल में जल–चिकित्सा का प्रचलन था। अथर्ववेद में वर्णित है कि जल में सभी प्रकार के रोगों को नष्ट करने की सामर्थ्य है।[6] ऋग्वेद में कहा गया है कि जल में सभी औषधीय गुण विद्यमान है– **अप्सु में सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।**[7] अर्थवेद में उसे हृदय के रोगों को दूर करने वाला[8], बलवर्धक[9] एवं रोगनाशक[10] कहा गया है। ऋषि अथर्वा ने जल को दिव्य औषधि कहा है– **आपो अग्रं दिव्या औषधयः।**[11] अथर्ववेद के उन्नीसवें अध्याय के उनहत्तरवें सूक्त में जल के औषधीय गुणों की चर्चा करते हुए उसे संजीवनी शक्ति प्रदाता स्वीकार किया गया है। साथ ही उसके युक्त–युक्त प्रयोग के द्वारा सौ वर्ष की आयु की परिकल्पना की गयी है।

आधुनिक युग में उषापान, सहस्रधारा–स्नान, कटि–स्नान, टब–स्नान आदि विधियों का प्रयोग विभिन्न रोगों के निदान हेतु किया जा रहा है। अथर्ववेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि रोगग्रस्त अंग को जल में भिगोना चाहिये अथवा इसे सिक्त रखना चाहिए–**जलाषेणाभिषिंचत जलाषेणोतसिंचत।**[12] इस आधार पर कहा जा सकता है कि आधुनिक जल चिकित्सा के मूल में वैदिक ऋषियों की जल चिकित्सा परम्परा ही है। आयुर्वेद में भी जल को विशेष महत्त्व दिया गया है। उदर–विकार के शमन हेतु प्रातःकाल बासी मुख यथाशक्ति जल पीने का विधान है। अजीर्णता होने पर भी अत्यधिक जल पीने की व्यवस्था की गयी है। अतः अजीर्णता का जल उत्तम उपचार है। शीतल जल से नित्य स्नान करने पर शरीर निरोग रहता है तथा इसमें स्फूर्ति तथा चेतना का संचार होता है।

वैदिक काल से ही सूर्य की किरणों को मानव–जीवन के लिये परमोपयोगी स्वीकार किया गया है। ऋग्वेद में सूर्य को स्थावर–जङ्गम जगत का आत्मा कहा गया है– **सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च**[13] **अन्यत्र** [14]सूर्य को रोगों से दूर करने वाला, बुद्धि को शुद्ध करने वाला तथा ज्ञान की वृद्धि करने वाला कहा गया है। अथर्ववेद में कहा गया है कि सूर्य के प्रकाश में रहना अमृत से युक्त स्थान में रहने जैसा है, इससे व्यक्ति दीर्घजीवी होता है।[15] अथर्ववेद के ही एक अन्य मन्त्र[16] में उदीयमान सूर्य को मृत्यु के सभी कारकों को नष्ट करने वाला कहा गया है। ऋग्वेद में वर्णित है कि उदीयमान सूर्य हृदय के सभी रोगों और रक्त की अल्पता को दूर करता है।[17] अथर्ववेद में भी सूर्य की अवरक्त रश्मियों को हृदय रोगों तथा रक्त की अल्पता को दूर करने वाला बताया गया है।[18] इस तरह वैदिक ऋषियों ने वैदिक ऋचाओं में अनेकशः सूर्य की रश्मियों को स्वास्थ्य के लिये हितकारी निरूपित किया है। उनकी मान्यता है कि सूर्य की किरणों में जीवनीशक्ति निहित है और उनमें रोगों को विनष्ट करने की सामर्थ्य भी है। आधुनिक युग में जो सूर्य चिकित्सा विकसित हुई है उसका मूल आधार वैदिक चिन्तन ही है। आधुनिक युग में वैदिक वाङ्मय में वर्णित सूर्य–रश्मियों के औषधीय

गुणों के आधार पर ही रोगोपचार की नाना विधियों को विकसित किया गया जिसे 'सन थेरेपी' नाम से अभिहित किया जाता है।

वैदिक ऋषियों ने वायु को प्राणशक्ति के रूप में मान्यता दी है और वैदिक ऋचाओं में उसकी विशेष महत्ता निरूपित की है। अथर्ववेद में वायु को चराचर जगत का स्वामी[19] कहा गया है साथ ही यह भी उद्घाटित है कि सब कुछ इसी में प्रतिष्ठित है।[20] वैदिक ऋचाओं में इसे भेषज, विश्वभेषज, अमृत आदि कहा गया है और इसे दीर्घ जीवन का मुख्य आधार स्वीकार किया गया है।[21] वैदिक ऋषियों की मान्यता है कि शरीर की पुष्टता प्राणों की सबलता पर निर्भर है अतः उन्होंने सुस्वास्थ्य एवं दीर्घायु के लिये प्राणायाम द्वारा प्राण–अपान क्रिया की व्यवस्था की अनुशंसा की।[22] अन्यत्र भी प्राणापान वायु के सम्यक् क्रिया से सर्वविध रोगों को दूर करने का संकेत प्राप्त होता है।[23] वस्तुतः ऋषियों ने भी प्रतिष्ठित किया है कि जीवनीशक्ति के संवर्धन का सशक्त माध्यम प्राणायाम है। इसके अभ्यास से शरीर और हृदय पुष्ट होता है और व्यक्ति रोगमुक्त होकर दीर्घायु होता है। इस पद्धति में श्वास को अन्दर भरकर उसे कुछ समय तक अन्दर रोककर बाहर छोड़ा जाता है जिन्हें क्रमशः पूरक, कुम्भक एवं रेचक कहा जाता है। योगदर्शन मे प्राणायाम के महत्त्व को दर्शाते हुए कहा गया है कि प्राणायाम से बढ़कर कोई दूसरा तप नहीं है। इससे शरीर के सारे मल नष्ट हो जाते हैं और ज्ञानरूपी ज्योति प्रज्वलित हो जाती है– **तपो न परं प्राणायामात्ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्येति।**[24] प्राणायाम से मस्तिष्क की सूक्ष्म और सुप्त शक्तियाँ जागृत हो जाती हैं। फलतः मानस रोग तनाव आदि नष्ट हो जाते हैं। इसी आधार पर प्राणायाम चिकित्सा प्रचलित हुई है। प्राणायाम से नाड़ी संस्थान, पाचन संस्थान, श्वसन संस्थान और रक्त संचार सभी सक्रिय रहते हैं और उनकी कार्यक्षमता बढ़ती है। अतः स्वस्थता के लिये प्राणायाम चिकित्सा या वायु चिकित्सा परम उपादेय है।

प्राकृतिक चिकित्सा में अग्नि चिकित्सा का भी विशेष स्थान है। यजुर्वेद में कहा गया है कि अग्नि शीत की औषधि है–**अग्निर्हिमस्य भेषजम्।**[25] अतः शीत एवं शीतजन्य रोगों में अग्नि–सेवन श्रेयष्कर है। अथर्ववेद में अग्नि को रोगोत्पादक कृमियों का नाशक कहा गया है।[26] अन्यत्र व्यवस्था दी गयी है कि अग्नि में गुग्गुल आदि के जलाने से रोग नष्ट हो जाते है।[27] एक मन्त्र में सर्प–विष उतारने के लिये सर्प द्वारा काटे गये अंश को गर्म लोहे आदि से जला कर या दागने की व्यवस्था दी गयी है।[28] ऋषियों की मान्यता है कि ऊर्जा के सम्पूर्ण स्रोत अग्नि में विद्यमान है। वैदिक ऋचाओं में उसे तेज, वर्चस, ओजस, दीर्घायु, बल और यश का कारण भी माना गया है।[29] साथ ही यह भी कहा गया है कि अग्नि ऑक्सीजन के रूप में शरीर में प्राणशक्ति को पुष्ट करती है जो यह प्रमाणित करता है कि इससे 'जीवनी–शक्ति' प्राप्त होती है। वर्तमान काल में अग्नि के साक्षात् सेवन अग्नि में रोगनाशक जड़ी–बूटी डालकर रोगों एवं कृमियों को नष्ट करना,

निवास आदि स्थानों को अग्नि के ताप से गर्म करना आदि बहुविध प्रयोग परिलक्षित होते हैं। इसे अग्नि–चिकित्सा के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा का एक प्रमुख घटक यज्ञ चिकित्सा भी है। वैदिक ऋषि प्राचीन काल में रोग अथवा महामारी फैलने पर बड़े–बड़े यज्ञ सम्पादित कर, आरोग्य का लाभ प्राप्त करते थे। तत्कालीन औषधि–विशेषज्ञ ऋतु–संधियों में उत्पन्न होने वाले रोग विशेष के निवारणार्थ तद्नुकूल विशिष्ट औषधियों या वनस्पतियों का चयन कर शास्त्रोक्त विधि से यज्ञानुष्ठान कराकर वायु की शुद्धता से लोगों को स्वास्थ्य लाभ प्रदान करते थे। अथर्वा ऋर्षि का कथन है कि जिस घर में नियमतः यज्ञ सम्पादित होता है, वहाँ रोग के विषाणु नष्ट हो जाते हैं।[30] अन्यत्र उन्होंने व्यवस्था दी है कि यज्ञ सामग्री के रूप में गुग्गुल का प्रयोग तपेदिक एवं संक्रामक रोगों से रक्षा करता है।[31]

प्राकृतिक चिकित्सा की दृष्टि से मृत्–चिकित्सा का भी विशेष महत्त्व है। ऋषियों ने मिट्टी को रोग–नाशक माना है क्योंकि उसमें औषधीय गुण विद्यमान हैं।[32] अथर्ववेद के एक मन्त्र में विधान किया गया है कि मिट्टी के लेप से व्रण आदि पक जाते हैं और व्यक्ति स्वस्थता को प्राप्त करता है।[33] अन्यत्र दीमक की बामी की मिट्टी का प्रयोग विष–चिकित्सा के लिये विहित है।[34] इस विष–चिकित्सा का विधान सुश्रुत ने भी कल्प स्थान में किया है।[35] नारायण उपनिषद् में मिट्टी को शारीरिक पुष्टिकारक तत्त्व के रूप में वर्णित किया गया है।[36] मृत्–चिकित्सा में मिट्टी का बहुविध प्रयोग किया जाता है। उदर–विकार में और उदरशूल आदि में मिट्टी का लेप लगाने का विधान है। आधुनिक प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में मिट्टी–लेप विधि का प्रयोग काफी कारगर सिद्ध हो रहा है।

वैदिक ऋचाओं में हस्तस्पर्श–चिकित्सा का भी उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद में प्रथमतः इस विधि का संकेत प्राप्त होता है। वहाँ मन्त्र पूर्वक दोनों हाथों से रोगी व्यक्ति के स्पर्श के द्वारा आरोग्यता का संकेत प्राप्त होता है। यहाँ हाथों में आरोग्य शक्ति के अनुभव पर बल दिया गया है, जिसमें आरोग्यता के गुण विद्यमान है।[37] अथर्ववेद में कहा गया है कि रोगी के शरीर का स्पर्श करते समय यह अनुभव करना चाहिए कि मेरे दोनों हाथ सुखदायी हैं और इनका स्पर्श लाभदायक है। ये सभी रोगों को दूर करने में समर्थ हैं। इनके स्पर्श से आपके अन्दर शक्ति का संचार हो रहा है और आप रोग मुक्त हो रहे हैं।[38] कौशिक सूत्र में भी 'हस्त स्पर्श चिकित्सा' का उल्लेख प्राप्त होता है।[39] वर्तमान युग में 'मेस्मरिज्म', हिप्नोटिज्म और रेकी आदि का प्राकृतिक चिकित्सा में बहुतायत प्रयोग हो रहा है जिसका विकास वैदिक हस्तस्पर्श–चिकित्सा द्वारा स्वीकार किया जा सकता है।

वैदिक वाङ्मय में मानस–चिकित्सा या मनोवैज्ञानिक चिकित्सा के भी संकेत प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद में **'त्वं मनसा चिकित्सीः'**[40] वरुण के इस कथन से मानस चिकित्सा का संकेत प्राप्त होता है। वस्तुतः

मानसिक रोगों का उपचार मनोवैज्ञानिक चिकित्सा द्वारा ही सम्भव है क्योंकि इसका मूल कारण मन ही है। ऋषि शन्ताति का कथन है कि मन ही रोगादि का कारण है और वही उनका निवारणकर्त्ता भी है।[41] अथर्ववेद में अनेक स्थलों पर रोगी व्यक्ति को आश्वासन के माध्यम से मानस चिकित्सा के सूत्र प्राप्त होते हैं। ऋषि ब्रह्मा और ऋषि उन्मोचन के मन्त्रों में रोगी को रोग से न डरने तथा सौ वर्ष तक जीने का आश्वासन दृष्टिगत होता है।[42] वस्तुतः मनोबल और संकल्प शक्ति द्वारा आत्मविश्वास उत्पन्न कर व्यक्ति को रोगमुक्त किया जा सकता है। यह चिकित्सा–विधि रोगी को आत्मविश्वास पैदा करती है तथा उसे मानसिक शक्ति प्रदान करती है जिसके परिणामस्वरूप रोगी व्यक्ति स्वस्थता को प्राप्त करता है। वर्तमान वैश्विक महामारी कोरोना से सम्पूर्ण विश्व भयाक्रान्त है। लोगों के बीच मनोविकार बहुतायत में परिलक्षित हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में मानस–चिकित्सा की उपादेयता अपरिहार्य है।

इस तरह हम देखते हैं कि वैदिक वाङ्मय में प्राकृतिक चिकित्सा रोग निवारणार्थ एक उत्तम पद्धति है जिसका सूत्रपात वैदिक ऋषियों ने किया है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसकी उपादेयता और बढ़ गयी है। सम्पूर्ण विश्व में प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति आकर्षण उत्पन्न हो रहा है क्योंकि यह पद्धति पूर्णतः दोषमुक्त है। इसे अंगीकार कर सम्पूर्ण मानव पूर्ण एवं स्थायी स्वस्थता का प्राप्त कर सकता है।

सन्दर्भ–

1. अथर्व0 2.9.3
2. वही, 11.6.14
3. सुश्रुत सं0 1.1.5
4. कश्यप सं0 पृ0 42
5. चरक सं0 1.30.20–21
6. अथर्व 6.57.01
7. ऋ0 1.23.20
8. अथर्व 6.24.01
9. वही 1.5.1
10. वही 1.6.1
11. वही 8.7.3
12. वही 6.57.2
13. ऋ0 1.115.2
14. वही 10.100.8

15. अथर्व0 8.1.1
16. वही 17.1.30
17. ऋ0 1.50.11
18. अथर्व0 1.22.1
19. अथर्व0 11.10.10
20. वही 11.4.15
21. ऋ0 10.186.1, अथर्व0 8.2.3 आदि
22 अथर्व0 3.11.5 एवं 6
23. वही 4.13.1
24. यो0सू0 2.52 पर व्यास भाष्य
25. यजु0 23.10
26. अथर्व0 5.23.13
27. वही 19.38.1
28. वही 10.4.26
29. वही 19.37.1
30. वही 7.76.5
31. वही 19.38.1
32. वही 2.3.4
33. वही 2.3.5
34. वही 6.100.1
35. सुश्रुत, कल्पस्थाव, 5.17
36. नारायणगोपनिषद् 1.8
37. ऋ0 10.137.1–7
38. अथर्व0 4.13.5–7
39. कौशिक सूत्र, 58.3.11
40. अथर्व0 5.11.1
41. अथर्व0 19.9.4
42. वही 5.30.8, 8.2.24 आदि